IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'आधे अधूरे' : अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं की कलह

दीक्षा यादव
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय,रामगढ़ (झारखंड)

शोध सारांश

'आधे अधूरे' हिंदी नाट्य साहित्य में नितांत भिन्न प्रकार का एक महत्वपूर्ण नाटक है और आज की समकालीन संवेदना का एक महत्वपूर्ण नाटक है। पहले दोनों नाटकों(आषाढ़ का एक दिन तथा लहरों के राजहंस) में ऐतिहासिक आवरण में आधुनिक संवेदना को व्यक्त किया गया था, लेकिन इसमें इतिहास के परिवेश से अपने को मुक्त करके सीधे सामाजिक परिवेश और आज के कटु यथार्थ को नाटक आधार बनाया गया है। कहा भी गया है कि 'आधे अधूरे' आधुनिक भारतीय मध्यम वर्गीय परिवार में बिखराव और संत्रास की कहानी है। इसी सामाजिक स्तरीकरण की भूख के कारण मानवीय संतोष का अधूरापन यहां दिखाई देता है। इस नाटक की सभी नारियां अतृप्ति के बवंडर में फंसी हुई है। आधुनिक युग के परिवार के खोखलेपन और विघटित होते मानवीय मूल्यों की झलक इसमें स्पष्ट दिखाई देती है। नारी अपने अधूरेपन को पूरा करने के लिए बाहर पूर्णता को खोजने का प्रयास करती है परन्तु पूर्णता के चक्कर में थोड़े से सुख से भी वंचित हो जाती है। उनकी अपूर्ण इच्छाओं अथवा महत्वाकांक्षाओं की कलह भी स्पष्ट दिखाई देती है।

मुख्य शब्द : आंतरिक कलह , उलझते रिश्ते , बदलता परिवेश , अपेक्षाएं , मानवीय संबंध , प्रेम घृणा, अन्तर्द्वंद, पूर्णता, असन्तुष्ट, आकाक्षाएं।

प्रस्तावना –

'आधे अधूरे' मोहन राकेश का तीसरा नाटक महत्वपूर्ण नाटक है। ''यह नाटक आज के शहरी क्षेत्र में मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को उभारता है।''[1] साथ ही ''मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृत मूल्यों , भ्रांतियों एवं दोगली नैतिकता का निर्मम अनावरण जो उस रिक्तता के कारण है। इसके केंद्र में पत्नी के प्रयत्न हैं, जो वह अपने बिखरते परिवार को बांधने के लिए करती है''।[2] 'आधे अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने मध्यम वर्ग के आर्थिक संघर्ष के साथ–साथ नारी की अतृप्त इच्छाओं का चित्रण किया है। इस नाटक में मध्यमवर्गीय परिवार के दाम्पत्य जीवन का असन्तुष्ट रुप प्रस्तुत किया है। उसकी विषय वस्तु तो बहुत ही सहज है। पति–पत्नी के बीच गलतफहमी, मनमुटाव , पति का नाराज होकर घर से चले जाना, गरीबी के कारण परिवार में अशांति, स्त्री की दूसरी जगह में शांति खोजने की कोशिश[3] और मध्यम वर्गीय परिवार की आंतरिक कलह और उलझते रिश्तो के साथ–साथ समाज में स्त्री पुरुष के बीच बदलते परिवेश तथा एक दूसरे से दोनों की अपेक्षाओं को चित्रित करता है।

आधे अधूरे नाटक के पात्रों की अपूर्ण महत्त्वकांक्षाए

'आधे अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक परिवार के माध्यम से विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व , उनके टूटन तथा बिखराव को व्यक्त किया है । इस नाटक के सभी पात्र वास्तविकता में जीते हैं न कोई कोरा आदर्शवादी है , न स्वपनजीवी। वे पूर्णतया सजीव हैं, हजारों संवेदना को स्पर्श करने में पर्याप्त सक्षम है।[4] नाटक के सभी पात्र हरदम आर्थिक विवचना–ग्रस्त मानसिकता में जीवन जीते हैं। 'आधे अधूरे' की सावित्री और उसका परिवार आर्थिक भूख और उससे उत्पन्न आवारापन का शिकार है। यह परिवार पहले कभी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था किंतु झूठी प्रतिष्ठा ,सुख–सुविधा, ऐशो–आराम आदि के लिए बेहिसाब खर्च करने से यह परिवार आर्थिक दृष्टि से संपन्नता से विपन्नता की ओर आ जाता है। जिसका परिणाम संपूर्ण परिवार को भोगना पड़ता है।[5] आर्थिक विपन्नता कि इस स्थिति का जिम्मेवार सावित्री और महेंद्र नाथ एक दूसरे को मानते हैं। महेंद्र नाथ व्यवसाय में असफल हो जाने पर मानसिक रूप से 'पंगु' बनकर घर में बैठ जाता है जिसका परिणाम विवशता में सावित्री को घर को चलाने के लिए घर से बाहर नौकरी के लिए निकलना पड़ता है और यहीं से परिवार में एक नई समस्या जन्म लेती है।[6]

पति–पत्नी के संबंधों के अच्छे समायोजन के लिए जरूरी है –मूल्य तंत्र का स्थाई होना, अपना यथार्थ मूल्यांकनय अपने आसपास के वातावरण से संतुष्ट रहना, दैनिक जीवन कि आपातिक स्थितियों से जूझने की योग्यता और जुझ सकने में आत्मविश्वास, सामाजिक मामलों में सक्रिय भाग लेना और अनेक घनिष्ठ मित्रों का होना, पति और पत्नी से मिलती–जुलती

रुचियां और मिलते–जुलते कामय अपने बच्चों के प्रति स्नेह और सहानुभूति। पर महेंद्र नाथ के परिवार में इस प्रकार की कोई भी स्थिति नहीं मिलती है।

महेंद्रनाथ नाटक का मुख्य पात्र है तथा मोहन राकेश ने उसे एक ऐसे वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है जो परिवार का मुखिया होते हुए भी अपने निठल्लेपन और घर –घुसडेपन के कारण अपमानजनक जीवन व्यतीत करने को विवश है। वह एक संवेदनशील , शकालु ,अस्थिर , कुढनशील, ईष्यालु एवं अंतर्द्वंद से पीड़ित आधुनिक मध्यमवर्गीय पुरुष है।[7] अपने अंतर्मुखी संवेदक व्यक्तिव के कारण वह केवल अपने ही व्यक्तिक अनुभूतियों एवं विश्वासों को ओढकर जीवन बिताता है तथा अपनी बाहय असमर्थताओं के कारण घर–परिवार में भी बेगाना से बनकर रह गया है तो निस्सगता , निष्क्रियता खोखलापन और रिक्तता उसके जीवन का एक अंग बन चुकी हैं।[8] डॉ. द्विजराम यादव के अनुसार– ''महेन्द्रनाथ को लेकर नाटक में कोई घटनाक्रम नहीं, बल्कि पात्रों के आपसी संघर्ष की मनःस्थितियों का चित्रण है। महेन्द्रनाथ अर्न्तद्वंद, कुंठा एवं आक्रोश से पीड़ित आधुनिक व्यक्ति है। पराजित तथा असफल नायक होने पर भी महेन्द्रनाथ अपने बच्चों के प्रति सहानुभूति रखता है। पारिवारिक जीवन में उसमें स्वाभिमान और मर्यादा का अभाव है। अकर्मण्यता, अलगाव, अनिश्चितता, बेगानापन, विक्षोभ, टूटन, निराशा आदि के होते हुए भी वह नायक की भूमिका निभाता है।[8ए]

इस नाटक की प्रमुख पात्रा और नायिका सावित्री का परिचय देते हुए मोहन राकेश ने लिखा है– ''उम्र 40 को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष।''[9] इस नाटक में सावित्री अपने जीवन से कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाती और अन्त तक इसी सम्पूर्णता को तलाशती रहती है, मनुष्य प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है परन्तु वहीं अपूर्ण भी है। यही अपूर्णता व्यक्ति को धीरे–धीरे त्रस्त वातावरण में ले जाती है, जहां व्यक्ति स्वयं ही अपने विनाश को आमंत्रित कर लेता है। इस नाटक के सभी नारी पात्र असन्तुष्ट रते हैं और थोड़ा सा पूर्णता का सुख पाने के लिए सम्पूर्ण सुख को गंवा देते हैं। सावित्री एक सम्पूर्ण पुरूष को पाने की इच्छा में एक पुरूष से दूसरे पुरूष के पास भागती रहती है और अन्त में वह महेन्द्रनाथ से विवाह कर लेती है।[10] परन्तु आगे चलकर उसे अधूरापन महसूस होता है। सावित्री की अपेक्षाएं बहुमुखी और अनन्त है। वह एक सम्पूर्ण पुरूष के साथ जीवन बिताने के लिए जीवन भर सम्पूर्णता की खोज में भटकती है।[11] सावित्री नौकरी करके परिवार को, घर को किसी तरह चला रही है पुरुष और स्त्री दोनों अपने अपने स्वभाव से भी विवश हैं और बहुत ही परिस्थितियों ने भी उनका स्वभाव ऐसा बना दिया है कि दोनों ही एक दूसरे को सह नहीं पाते हैं बल्कि एक तरह से दोनों परस्पर नफरत करते हैं। डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ के शब्दों में – ''महेन्द्रनाथ, सावित्री के पास कभी नृशंसता से पेश आता है तो कभी दरिंदा बन बैठता है और कभी अत्यन्त दीन–हीन बनकर मिट्टी का पुतला बन जाता हैं।''[12] परन्तु एक साथ रहने को विवश भी हैं परिवार का कोई सदस्य सावित्री को समझ नहीं पाते। विपरीत वे उसे अपमानित करते रहते हैं जिससे वह अकेली हो जाती है। वह परिवार की उपेक्षा को सहन ना करते हुए क्षुब्ध होकर कहती है – '' यहां पर सब लोग समझते क्या है मुझे? एक

मशीन जो कि सबके लिए आटा पीस पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है, मगर किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कैसे मैं[13] जब..........और किसी को यहां दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को पिसती रहूं रात दिन? मैं भी क्यों ने सुर्खरू होकर रहूं अपनी जगह? उससे तो तुम में से कोई छोटा नहीं होगा।''[14] वह अपने पति के बारे में कहती भी है, ''पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं है उसने अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत हो?.........जबसे मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी ने किसी का सहारा ढूंढते पाया है। यही नहीं, लगता है वह खुद एक आदमी का आधा चौथाई भी नहीं है''।[15] एक निरा आधा अधूरा आदमी जबकि वह समझती है कि आदमी अपना घर बस आता है अंदर के अधूरे पन को भरने के लिए इसलिए वह अपने पूरे वायदे के साथ एक पूरा आदमी चाहती है जो दूसरों के सांचे के अनुसार ढलता रहे, दूसरों पर भरोसा करके ही ने जीए और हमेशा ''कसौटी'' न तलाशे।[16] इस अभाव जनित मानसिक असंतोष में वह महेंद्र नाथ से कटती चली जाती है और अपने निकम्मे व व्यक्तित्वहीन पति के प्रति खीज से भरी, घर की टूटती बिखरी जिंदगी से उबकर पूरे आदमी की खोज में अंत तक भटकती रहती है, अलग–अलग अधूरे आदमी टकराते हैं, अपना जीवन अपनी तरह से जीने के लिए सिंघानिया, जुनेजा, मनोज, जगमोहन सभी से आशा करती है[17] और अपनी घुटन को खत्म करने के इरादे से सोचती है, ''मेरे पास अब बहुत साल नहीं है जीने को, पर जितने हैं ,उतने मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज। मेरी तरफ से यह अंत है उसका निश्चित अंत''।[18] यह असफलता उसके स्वभाव को और अधिक क्रूर, कटु और तीखा बना देती है बड़ा ही प्रतिक्रियात्मक और कहीं–कहीं बड़ा आक्रमक भी। फिर भी उसे परिवार की आर्थिक समस्या सुलझानी है, वह अपने बेकार बेटे की नौकरी लगाने के लिए सिंघानिया के आगे गिड़गिड़ाती है लेकिन वह सहानुभूति भी उसे नहीं मिल पाती। पति के साथ साथ बेटा भी उसका तिरस्कार करता है, ''मुझे नहीं चाहिए नौकरी कम से कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं''।[19] सावित्री की इच्छा है कि महेन्द्रनाथ निठल्ला न रहकर कुछ काम करे, बेटा भी नौकरी करे और बेटियों की शादी अच्छे घर में हो। सावित्री की ये इच्छाएं उसकी महत्वकांक्षा न होकर पारिवारिक दायित्व है। वह अपने बच्चों के भविष्य के लिए (सिंघानियां) द्वारा किए गए विचित्र व्यवहार को भी सहन करती है क्योंकि वह अपने बेटे को नौकरी दिलवाना चाहती है। उसके लिए मूल्य चुकाने के लिए वह तैयार है। सावित्री का व्यक्तित्व किसी गहरी मानवीय स्थिति इंसानी संकट को उतना अच्छा नहीं करता जितना एक विशिष्ट व्यक्ति की स्थिति को अधूरापन और संपूर्णता की खोज इस नाटक में हर जगह मिलती है।

इस नाटक में सावित्री की अतृप्ति का प्रभाव उसके बच्चों पर भी पड़ता है, जिसके कारण परिवार टूटने–बिखरने लगता है। परिवार के सम्बन्धों के बीच की कड़वाहट को साफ देखा जा सकता है। स्त्री पुरूष दोनों ही पूर्णता को प्राप्त करने के लिए बाहर भटकते फिरते हैं। परन्तु ज्यादा की इच्छा में अपने वास्तविक सुख से वंचित रह जाते हैं। लेखक ने आधुनिक

युग की नारी को चित्रित किया है परन्तु सिर्फ कामवासना में लिप्त नहीं है अपितु अपने परिवार की जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए नारी के अंतः संघर्ष को उजागर किया गया है। मूल्यों के विघटित रूप को यहाँ पर देखा जा सकता है। पति–पत्नी के विघटित होते सम्बन्ध और उनका बच्चों पर प्रभाव परिवार को खोखला बना देता है।

यह नाटक स्त्री–पुरूष के लगाव और तनाव, पारिवारिक विघटन तथा मानवीय संतोष के अधूरेपन को मूर्त करता है। नाटककार राकेश की सूक्ष्म दृष्टि ने मध्यवर्गीय परिवारों में दिन–प्रतिदिन बढ़ती आर्थिक विषमता के सम्भाव्य परिणामों को खोज निकाला है।[20] सावित्री और महेन्द्रनाथ के सम्बन्धों में कटुता आ चुकी है। वे एक–दूसरे से असंतुष्ट हैं। अब स्थिति यह है कि ''दोनों की एक–दूसरे को अपनी बेचैनी और अशांति का मूल कारण मानते हैं। पर वास्तविकता को पहचानने की कोशिश उनमें से कौन करता है यह नही बताया जा सकता। बच्चे भी मानते है कि ममा और डैडी में प्यार नही है। वे एक–दूसरे के साथ नही रह सकते। किन्तु फिर भी वह यही नही चाहेंगे कि उनकी ममा अपने घर को छोड़कर किसी और के साथ चली जाएं।[21]

बिन्नी, महेंद्रनाथ और सावित्री की बड़ी लड़की है वह आधुनिक युवती है। वह भी अपनी मां की तरह जीवन से असंतुष्ट हैं। बिन्नी भी अवसाद, उतावलापन एवं असंतोष की प्रतिमूर्ति है।[22] परिवार की बड़ी लड़की 'बिन्नी' मनोज के साथ मौका मिलते ही चुपचार एक रात 'घर' से भाग जाती है। किन्तु मनोज के 'घर' में भी जाकर वह सुखी नहीं होती। वहां भी वह अशांत रहती है। मनोज का कहना है कि वह इस घर से अपने साथ कुछ लेकर आयी है, जिससे वे दोनों अशांत हैं। वह 'जो' लेकर आयी है उससे वे दोनों सामान्य रूप से ठीक से रह नहीं पाते। 'वह' क्यसा है? इसकी खोज में 'बिन्नी' फिर वापिस घर आती है और घर आकर वह कहती है – ''मेरा अपना घर!.....हाँ। और मैं आती हूं कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज़ है वह इस घर में जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है। तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहां है वह? इस घर के खिड़कियों–दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुम में? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहां छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मै इस घर से अपने अंदर लेकर गयी हूं? बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहां पर है वह इस घर में?''[23] यद्यपि बड़ी बेटी बिन्नी अपनी मर्जी से भागकर अपनी माँ के प्रेमी से विवाह करती है परन्तु असन्तुष्ट रहती है। इस नाटक में अकेलेपन, अलगाव, अतृप्ति साफ दिखाई देती है। वह अपने पति का घर छोड़कर मायके चली आई है उसे अपनी जिंदगी अधूरी लगती है। जल्दी ही वह अपने पति से ऊब जाती है। अधूरेपन के अहसास से उसके मन में कड़वाहट भर गई है। वह कहती है कि ''शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूं। पर अब आकर...अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नही था।'' बिन्नी के मन में अनजाने ही पति मनोज के प्रति विद्रोह एवं वितृष्णा का भाव जाग उठता है। उन भावों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों एवं तनावों से अपने अहं को बचाने के लिए वह अपने पति के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति विकसित कर लेती है। अपनी जिंदगी के इस बिखराव एवं

अस्तित्व के कारण वह अपने मायके को ही मानती है। माता–पिता के तनाव के प्रभाव से बच्चे भी अछूते नही रह पाते और बड़ी बेटी भी माँ की तरह असंतुष्ट और उतावली होकर सब फैसले करती है। सम्पूर्णता की खोज में अपने ही हाथों अपने घर को टूटने की कगार पर खड़ा कर देती है। बिन्नी ने सिर्फ मां के संस्कार ही ग्रहण नहीं किए अपितु माता–पिता के बीच उत्पन्न तनाव को देखकर भी वह उससे मुक्त नहीं हो पाती। वह नौकरी करना चाहती है सिर्फ अपने पति को नीचा दिखाने के लिए और इन सब परिस्थितियों में माँ और बेटी में समानता दिखाई देती है। बिन्नी माता–पिता के बीच के तनाव को समाप्त करना चाहती है परन्तु चाहकर भी वह अपने माता–पिता के बीच का तनाव समाप्त नहीं कर पाती।

नाटक के प्रारम्भ में पात्र–परिचय के अन्तर्गत नाटककार ने अशोक का परिचय इस प्रकार दिया है – ''लड़का। उम्र इक्कीस के आसपास। पतलून के अंदर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई चेहरे से, यहां तक कि हंसी से भी, झलकती खास तरह की कड़वाहट।''[24] अशोक भी बिन्नी की तरह इस घर में बेगानापन महसूस करता है। चेहरे से या हंसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट उसकी आंतरिक कड़वाहट एवं खीझ को ही व्यक्त करता है। अपने अंतर्मुखी संवेदक व्यक्तित्व के कारण वह बाह्‌य संसार के प्रति उदासीन होकर अपने आंतरिक जगत में रहता है। अपने परिवार की टूटी हुई परिस्थिति का बोध होते हुए भी उसके प्रति वह अधिक सचेत नहीं होता है।[25]

सावित्री, अशोक के क्रियाकलापों की शिकायत करती हुई कहती है, ''दिलचस्पी तो तेरी सिर्फ तीन चीजों में है दिनभर ऊबने में, तस्वीरें काटने में और......घर की चीज ले जाकर......''[26] मोहन राकेश ने अशोक को आधुनिक काल के युवा पीढ़ी के लक्ष्यहीन और आवारा होकर फिरने वाले व्यक्ति के रूप में पाठकों और दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। अशोक आधुनिक युग के टूटे परिवार और अनमेल माता–पिता की संतान का प्रतिनिधि है[27] जो अन्दर से बेचैनी, घुटन और टूटन का अनुभव करता है। अपनी इस आंतरिक बेचैनी, घुटन और टूटन के कारण वह एक कर्तव्यहीन, लापरवाह और विद्रोही युवक बन जाता है। डॉ. सुशीला देवी शर्मा के शब्दों में – ''लड़का जीवन के प्रति आस्थाहीन, आलसी आधुनिक युवकों का प्रतीक है, जिसे कोई नौकरी अच्छी नहीं लगती, उसे गम्भीरता और समझदारी से कोई मतलब नहीं है।''[28]

किन्नी, सावित्री और नरेंद्र नाथ की छोटी लड़की है। मोहन राकेश ने उसका परिचय देते हुए लिखा है – ''उम्र 12 और 13 वर्ष के बीच भावुक स्वर, चाल, हर चीज में विद्रोह।[29] फ्राक चुस्त, एक मौजे में सुराख''। किन्नी के विद्रोहात्मक व्यवहार के पीछे परिवारवालों के तिरस्कार पूर्ण व्यवहार और घर के तनावपूर्ण एवं घुटन भरे वातावरण प्रमुख कारण बनता है। उसकी वैयक्तिक, एवं परिवेशगत विपन्नताएं कम आयु में ही उसके अंतः बाह्‌य व्यक्तित्व, चरित्र एवं व्यवहार को अस्त व्यस्त एवं अव्यावहारिक बना देती है। परिवार में कोई भी सदस्य उसकी समस्याएं दूर करने के लिए ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं।''[30] किन्नी पड़ोस की लड़की सुरेखा से यौन विषयों पर बात वार्तालाप करती पाई जाती है। तब उसका भाई उसे पकड़ कर लाता है तो वह गलती स्वीकार करने के बजाय और बढ़ चढ़ कर जवाब देती है। अस्वीकार, जिद, बड़बोलापन, अकड़, निषेध सही

गलत का निश्चय इत्यादि ही उसके चरित्र के अंग हैं। वह किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती।[31] परिवार में उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की ओर कोई ध्यान नहीं देता है। परिवारवालों के तिरस्कार पूर्ण व्यवहार उसके आत्मसम्मान पर गहरी चोट पहुंचाते हैं। साथ–ही–साथ उसमें आक्रामकता, विद्रोह, निर्दयता, झूठ बोलने की प्रवृत्ति, समाज विरोधी व्यवहार, असहायता की भावना, कुंठा आदि भी उत्पन्न होते है। किन्नी को हमेशा यही शिकायत है कि परिवार में कोई भी व्यक्ति उसकी बातें सुनने तथा उसकी छोटी–मोटी आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने को तैयार नही हैं।[32] किन्नी अपने घर के किसी भी सदस्य के प्रति सम्मान का भाव नहीं रखती है। क्योंकि माँ का अपने पुरूष मित्रों के साथ सम्बन्ध जोड़ना, पिता का निकम्मापन, भाई की बेकारी, आवारापन एवं वर्णा नामक लड़की के प्रति आकर्षण, बड़ी बहन का प्रेमी मनोज के साथ चले जाना आदि सब–के–सब का प्रभाव उसके किशोर मन पर इतने प्रबल रूप में पड़ता है कि उसे परिवार के किसी भी सदस्य के साथ सम्मान का भाव बनाए रखने नही देता है। उसे अपने परिवार को लेकर पड़ोसियों के मुंह से सदैव बुरी–बुरी बातें सुननी पड़ती है। उन लोगों के उपहास एवं व्यंग्य भरी वाणियों का सामना करने में असफल होकर वह मानसिक रूप से पूरी तरह टूट जाती है।[33]

अशोक, बिन्नी और किन्नी के सम्बन्धों का माधुर्य गायब हो गया है। गुम हो गया है। मूल कारण अर्थाभाव है और अर्थाभाव से उपजा एक कारण घर का माहौल है। पिता की असहाय स्थिति से सब परिचित हैं और अशोक उनके प्रति सहानुभूतिशीलता होता हुआ भी कुछ नहीं कर पाता। अशोक और किन्नी आपस में उलझते हैं। यह भाई–बहन की सामान्य झड़प भी हो सकती है लेकिन जो तीखापन इन दोनों की बोलियों में है, वह तकलीफदेह है और आधुनिक परिवेश के निर्मम विश्लेषण का कलात्मक रंग–प्रयास है।[34]

माता–पिता से बच्चों के सम्बन्धों का माधुर्य भी खत्म हो चुका है। बिन्नी को लगता है कि मनोज के साथ रहते हुए भी इस घर की कोई चीज उस पर उनके सम्बन्धों पर हावी रहती है। अशोक को ममा का नये–नये लोगों को घर लेकर आना (कारण चाहे घर की आर्थिक समृद्धि का प्रयास बताया जाए) अच्छा नहीं लगता। बिन्नी माँ की हमदर्द बन गयी है और अशोक को पापा पर रहम आता है। किन्नी का जैसे किसी से कोई रिश्ता नहीं रह गया। अशोक का अन्तर्सत्स उससे छुपा नही। अशोक परिवार के सदस्यों से कटकर अभिनेत्रियों की रंगीन तस्वीरों की दुनिया में खो गया है। वह जितनी ही ऐसी तस्वीरें काटता है, उतना ही इस परिवार से कटता है। किन्ही की भी अलग दुनिया आबाद होने लगी है। उसे यहां कुछ अच्छा नहीं लगता। कुछ पता नहीं चलता। उससे टिन नही खुलता और नाटक के अन्त में वह दरवाजा बंद कर लेती है। अन्दर से ही वह घोषणा करती है– 'नहीं खुलेगा दरवाजा।' यह दरवाता वस्तुतः प्रतीक है...।[35] सब अपने–अपने दायरों में कैद हैं। सबकी अपनी अलग दुनिया है। सम्बन्ध नीरस हो गये हैं। लगाव–जुड़ाव समाप्त हो गया है। कोई किसी के लिए मरना–खपना नहीं चाहता।

निष्कर्ष –

मोहन राकेश ने 'आधे अधूरे' नाटक में आधुनिक समय में स्त्री पुरुष के बदलते संबंधों की नितांत बदली हुई जटिल मनोस्थिति को, द्वंद को, उनकी समस्याओं को, प्रश्नों को, निरंतर बढ़ते अभाव को अधिक गहराई से, अधिक यथार्थ दृष्टि से इस नाटक में उठाया है। साथ ही पात्रों की अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं की कलह का विवरण भी दिया है। महेंद्र नाथ और सावित्री के अतिरिक्त जहां तक बिन्नी, किन्नी और अशोक का संबंध है वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही और प्रभावित करने वाले पात्र हैं। विशेषकर किन्नी जिसके व्यवहार, मुद्राओं आव भाव भाषा, समाज सबसे बिगड़ी हुई 13 वर्ष की लड़की का मनोविज्ञान बड़े ही सही तरीके से प्रस्तुत किया गया है। विखंडित पीड़ित परिवार के बच्चों के मानसिक विकारों को आज की पीढ़ी के बदलते दृष्टिकोण और मानसिकता को भी मोहन राकेश ने प्रस्तुत किया है। ऐसा विद्रोह, विरोध, अपशब्द, अहंकार, बेकारी, मानवीय संबंधों का टूटना – बिखरना, आदमी का अकेलापन तथा उससे मुक्ति पाने के दूसरे गलत रास्ते ढूंढना है। तृप्ति, असंतोष, भटकन, सब आज की देन है और कह सकते हैं कि सभी पात्रों को किसी दूसरे साथी की तलाश है। सभी अपने में आधे से हैं अधूरे हैं और उनका वर्तमान साथी इस अकेलेपन को कम नहीं करता बल्कि इस एहसास को और बढ़ा देता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. गोविन्द चातक, आधुनिक नाटक का मसीहा, पृ. 81
2. सुशील चौधरी (नटरंग–21 से)
3. स. सुन्दरलाल कथूरिया, नाटककार मोहन राकेश, पृ. 143
4. डॉ. षटटणशेट्टी, मोहन राकेश और उनके नाटकःएक अघुनातन विश्लेषण,पृ. 168
5. डॉ. प्रतिभा येरेकार, मोहन राकेश के नाटकों में नारी, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2009, पृ. 71
6. डॉ. प्रतिभा येरेकार, मोहन राकेश के नाटकों में नारी, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2009, पृ. 71
7. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 184–185
8. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 184–185

8ए. डॉ. द्विजराम यादव, मोहन राकेश के नाटक, पृ. 50

9. मोहन राकेश, आधे अधूरे, सातवाँ संस्करण, जून, 1986, पृ. 11
10. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 208
11. डॉ. रमा शुक्ला, मोहन राकेश के नाटकों में नारी भावना, पृ. 59
12. डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ, मोहन राकेश और उनके नाटक : समग्र मूल्यांकन, पृ. 177

13. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 45

14. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 45

15. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 88–89

16. डॉ. पांडव कुमार, मोहन राकेश के नाटकों में मानवीय सम्बन्धों का विश्लेषण, जानकी प्रकाशन, पटना/नई दिल्ली (2015) पृ. 77

17. मोहन राकेश, आधे अधूरे, सातवाँ संस्करण, जून, 1986, पृ. 77

18. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 88–89

19. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 46

20. स. सुन्दरलाल कथूरिया, नाटककार मोहन राकेश (मध्यमवर्गीय विसंगति), पृ. 143

21. डॉ. गोविन्द चातक, आधुनिक नाटक का मसीहा, पृ. 101

22. डॉ. शारदा प्रसाद, मोहन राकेश के नाटक विषय और विधान, दिल्ली, 2008, पृ. 278

23. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 31–32

24. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 24

25. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 197

26. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 51

27. डॉ. के.गोतमीअम्मा, मोहन राकेश के नाटक : एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन, मथुरा (2009) पृ. 91

28. डॉ. सुशीला देवी शर्मा, हिन्दी रंग परम्परा और मोहन राकेश, पृ. 207

29. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 23

30. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 229

31. डॉ. शारदा प्रसाद, मोहन राकेश के नाटक विषय और विधान, दिल्ली, 2008, पृ. 281

32. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 229

33. टी.साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मथुरा (2015) पृ. 231

34. डॉ. अब्दुल सुभान, मोहन राकेश के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (2003), पृ. 136

35. डॉ. अब्दुल सुभान, मोहन राकेश के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (2003), पृ. 136